हेतु के प्रकार

जैन तर्कपरम्परामें हेतुके प्रकारोंका वर्णन तो अकलङ्कके ग्रन्थों (प्रमाणमी० पृ० ६७-६८) में देखा जाता है पर उनका विधि या निषेधसाधक रूपसे स्पष्ट वर्गीकरण हम माणिक्यनन्दी. विद्यानन्द आदिके ग्रन्थोंमें ही पाते हैं। माणिक्यनन्दी, विद्यानन्द, देवसूरि और आ० हेमचन्द्र इन चारका किया हुआ ही वह वर्गीकरण ध्यान देने योग्य है। हेतुप्रकारोंके जैनग्रन्थगत वर्गीकरण मुख्यतया वैशेषिक सूत्र और धर्मकीर्त्तिके न्यायबिन्दु पर अवलम्बित हैं। वैशेषिकसूत्र (९.२.१) में कार्य, कारण, संयोगी, समवायी और विरोधी रूपसे पञ्चविध लिंगका स्पष्ट निर्देश है। न्यायबिन्दु (२.१२) में स्वभाव, कार्य और अनुपलम्भ रूपसे त्रिविध लिंगका वर्णन है तथा अनुपलब्धिके ग्यारह प्रकार[1] मात्र निषेधसाधक रूपसे वर्णित हैं, विधिसाधक रूपसे एक भी अनुपलब्धि नहीं बतलाई गई है। अकलङ्क और माणिक्यनन्दीने न्यायबिन्दुकी अनुपलब्धि तो स्वीकृत की पर उसमें बहुत कुछ सुधार और वृद्धि की। धर्मकीर्त्ति अनुलब्धि शब्दसे सभी अनुपलब्धियोंको या उपलब्धियोंको लेकर एकमात्र प्रतिषेधकी सिद्धि बतलाते हैं तब माणिक्यनन्दी अनुपलब्धिसे विधि और निषेध उभयकी सिद्धिका निरूपण करते हैं इतना ही नहीं बल्कि उपलब्धिको भी वे विधि-निषेध उभयसाधक बतलाते हैं[2]। विद्यानन्दका वर्गीकरण वैशेषिकसूत्रके आधार पर है। वैशेषिकसूत्रमें अभूत भूतका, भूत अभूतका और भूत-भूतका इस तरह

---

१ 'स्वभावानुपलब्धिर्यथा नाऽत्र धूम उपलब्धिलक्षणप्राप्तस्यानुपलब्धेरिति। कार्यानुपलब्धिर्यथा नेहाप्रतिबद्धसामर्थ्यानि धूमकारणानि सन्ति धूमाभावात्। व्यापकानुपलब्धिर्यथा नात्र शिंशपा वृक्षाभावात्। स्वभावविरुद्धोपलब्धिर्यथा नात्र शीतस्पर्शोऽग्नेरिति। विरुद्धकार्योपलब्धिर्यथा नात्र शीतस्पर्शो धूमादिति। विरुद्धव्याप्तोपलब्धिर्यथा न ध्रुवभावी भूतस्यापि भावस्य विनाशो हेत्वन्तरापेक्षणात्। कार्यविरुद्धोपलब्धिर्यथा नेहाप्रतिबद्धसामर्थ्यानि शीतकारणानि सन्ति अग्नेरिति। व्यापकविरुद्धोपलब्धिर्यथा नात्र तुषारस्पर्शोऽग्नेरिति। कारणानुपलब्धिर्यथा नात्र धूमोऽन्यभावात्। कारणविरुद्धोपलब्धिर्यथा नास्य रोमहर्षादिविशेषाः सन्निहित-दहनविशेषत्वादिति। कारणविरुद्ध-कार्योपलब्धिर्यथा न रोमहर्षादिविशेषयुक्त-पुरुषवानयं प्रदेशो धूमादिति॥'—न्यायवि० २. ३२-४२।

२ परी० ३.५७-५९, ७८, ८६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रिविधलिंग निर्दिष्ट है[1]। पर विद्यानन्दने उसमें अभूत अभूतका—यह एक प्रकार बढ़ाकर चार प्रकारोंके अन्तर्गत सभी विधिनिषेधसाधक उपलब्धियों तथा सभी विधिनिषेधसाधक अनुपलब्धियोंका समावेश किया है (प्रमाणप० पृ० ७२-७४)। इस विस्तृत समावेशकरणमें किन्हीं पूर्वाचार्योंकी संग्रहकारिकाओंको[2] उद्धृत करके उन्होंने सब प्रकारोंकी सब संख्याओंको निर्दिष्ट किया है मानो विद्यानन्दके वर्गीकरणमें वैशेषिक सूत्रके अलावा अकलङ्क या माणिक्यनन्दी जैसे किसी जैनतार्किकका या किसी बौद्ध तार्किकका आधार है।

देवसूरिने अपने वर्गीकरणमें परीक्षामुखके वर्गीकरणको ही आधार माना हुआ जान पड़ता है फिर भी देवसूरिने इतना सुधार अवश्य किया है कि जब परीक्षामुख विधिसाधक छः उपलब्धियों (३.५६) और तीन अनुपलब्धियों (३.८६) को वर्णित करते हैं तब प्रमाणनयतत्त्वालोक विधिसाधक छः उपलब्धियों (३.६४) का और पाँच अनुपलब्धियों (३.६६) का वर्णन करता है। निषेधसाधकरूपसे छः उपलब्धियों (३. ७१) का और सात अनुपलब्धियों (३.७८) का वर्णन परीक्षामुखमें है तब प्रमाणनयतत्त्वालोकमें निषेधसाधक अनुपलब्धि (३. ६०) और उपलब्धि (३. ७६) दोनों सात-सात प्रकार की हैं।

आचार्य हेमचन्द्र वैशेषिकसूत्र और न्यायबिन्दु दोनोंके आधार पर विद्यानन्दकी तरह वर्गीकरण करते हैं फिर भी विद्यानन्दसे विभिन्नता यह है कि आ० हेमचन्द्रके वर्गीकरणमें कोई भी अनुपलब्धि विधिसाधक रूपसे वर्णित नहीं है किन्तु न्यायबिन्दुकी तरह मात्र निषेधसाधकरूपसे वर्णित है। वर्गीकरणकी अनेकविधता तथा भेदोंकी संख्यामें न्यूनाधिकता होने पर भी तत्त्वतः सभी वर्गीकरणोंका सार एक ही है। वाचस्पति मिश्रने केवल बौद्धसम्मत वर्गीकरणका ही नहीं बल्कि वैशेषिकसूत्रगत वर्गीकरणका भी निरास किया है (तात्पर्य० पृ० १५८-१६४)।

१ 'विरोध्यभूतं भूतस्य। भूतमभूतस्य। भूतो भूतस्य।'—वै०सू० ३. ११-१३।

२ 'अत्र संग्रहश्लोकाः—स्यात्कार्यं कारणव्याप्यं प्राक्सहोत्तरचारि च। लिङ्गं तल्लक्षणव्याप्तेर्भूतं भूतस्य साधकं॥ षोढा विरुद्धकार्यादि साक्षादेवोपवर्णितम्। लिङ्गं भूतमभूतस्य लिंगलक्षणयोगतः। पारम्पर्यात्तु कार्यं स्यात् कारणं व्याप्यमेव च। सहचारि च निर्दिष्टं प्रत्येकं तच्चतुर्विधम्॥ कारणाद् द्विष्ठकार्यादिभेदेनोदाहृतं पुरा। यथा षोडशभेदं स्यात् द्वाविंशतिविधं ततः॥ लिङ्गं समुदितं ज्ञेयमन्यथानुपपत्तिमत्। तथा भूतमभूतस्याप्यूह्यमन्यदपीदृशम्॥ अभूतं भूतमुन्नीतं भूतस्यानेकधा बुधैः। तथाऽभूतमभूतस्य यथायोग्यमुदाहरेत्॥ बहुधाप्येवमाख्यातं संक्षेपेण चतुर्विधम्। अतिसंक्षेपतो द्वेधोपलम्भानुपलम्भभृत्॥' —प्रमाणप० पृ० ७४—७५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org